साक्षात्कार

नारीवाद और विज्ञान

विज्ञान के प्रमुख शिक्षण संस्थानों में सदैव ही पुरुषों का वर्चस्व रहा है और महिलाओं की संख्या नगण्य। शायद ऐसा विज्ञान विषय की प्रकृति और इन संस्थानों की पुरुषवादी सोच के कारण है। इस बारे में अपने अनुभव और अपने विचार **विवेक वेलांकी के साथ साझा कर रही हैं चयनिका शाह** जिन्होंने आईआईटी, मुम्बई से पीएच.डी. करने के बाद मुम्बई विश्वविद्यालय से सम्बद्ध एक महाविद्यालय में बीस साल से भी ज़्यादा समय तक पढ़ाया है। इसके अलावा मुम्बई स्थित टाटा इंस्टिट्यूट ऑफ सोशल साइंसेज़ में स्नातकोत्तर स्तर पर 'नारीवादी विज्ञान अध्ययन' और 'विज्ञान शिक्षण' जैसे पाठ्यक्रम बनाए हैं साथ ही उनका अध्यापन भी किया है।

विवेक वेलांकी: आपने आईआईटी (भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान), मुम्बई से 1980 के दशक में पीएच.डी. की है और उस दौरान के अपने अनुभवों के बारे में आपने लिखा है कि, "समाज में यह आम धारणा मौजूद है कि विज्ञान व वैज्ञानिक संस्थान आम तौर पर पुरुषों के क्षेत्र हैं और खास तौर से ब्राह्मण पुरुषों के।" आईआईटी में विज्ञान की छात्रा होने के साथ-साथ एक महिला होने का आपका अनुभव क्या रहा?

चयनिका शाह: दरअसल यह बाद की समझ है। जब मैं वहाँ थी, तब मैं और मुझ जैसे अन्य लोग, कभी भी खुद को दूसरे छात्रों से अलग नहीं समझते थे। मुझे लगता है कि अपने आईआईटी कैम्पस में जो पहला नारीवादी संघर्ष हमने किया वह था हमारे हॉस्टल का नाम बदल कर 'हॉस्टल-10' करवाने का। उससे पहले वह 'लेडीज़ हॉस्टल' के नाम से जाना जाता था। हमारा कहना था कि चूँकि हम भी बाकी सभी की तरह ही विद्यार्थी हैं, और चूँकि बाकी सभी हॉस्टल्स के नाम 'हॉस्टल-1' से 'हॉस्टल-9' तक हैं तो इस लिहाज़ से हमारे हॉस्टल का नाम 'हॉस्टल-10' होना चाहिए। उस समय एक विद्यार्थी और समान व्यक्ति के तौर पर उस

जगह पर अपने दावे को मनवाने की हमारी माँग थी कि इस बात पर कतई ज़ोर न दिया जाए कि हम महिलाएँ हैं ('लेडीज़' तो हर्गिज़ नहीं) और इसलिए किसी भी लहज़े में दूसरों से अलग हैं।

अब जब पीछे मुड़कर देखती हूँ, तो मुझे महसूस होता है कि वह बेहद पुरुषवादी माहौल था, और आज भी है। जब मैं वहाँ गई थी, तब 3000 विद्यार्थियों में 70 लड़कियाँ थीं। हमें अजूबों की तरह देखा जाता। यह तो होना ही था। मैंने इस बारे में लिखा भी है, वे सब कहा करते थे कि जेंडर तीन होते हैंः पुरुष, महिलाएँ और आईआईटी की महिलाएँ। आईआईटी में पढ़ रही लड़कियों का बेहूदा मज़ाक उड़ाने का यह उनका तरीका था। उस दौर में आईआईटी की लडकियाँ पुरुषों की तरह बनने की कोशिश करती थीं, और इन तानों को अनदेखा करने की कोशिश करतीं। लेकिन 2011 में मैंने एक बार फिर कुछ ऐसा पढ़ा जिसमें आईआईटी के पुरुष यह तर्क रखने की कोशिश कर रहे थे कि आईआईटी में तो महिलाएँ हैं ही नहीं, क्योंकि वे अजीब दिखती हैं, वे पर्याप्त मेहनत नहीं कर रही हैं। इस तरह आदमी अभी भी यह कह रहे हैं कि तीन जेंडर हैंः पुरुष, महिलाएँ और तीसरा जिन्हें अब वे गैर-पुरुष कहते हैं।

मुझे लगता है कि यह पूरी तरह से पुरुषवादी माहौल है - छात्रों की बड़ी संख्या के बीच एक बहुत ही छोटा माइनॉरिटी समूह होना - 60 विद्यार्थियों की कक्षा में एकमात्र छात्रा होना कैसा होता है, इसे महसूस करने से ही यह बात समझ में आती है। और ये कोई आम लड़के नहीं हैं। ये वो पुरुष हैं जिन्हें समाज के सभी हिस्सों से अनुमोदन प्राप्त है कि वे दूसरों से तेज़ और श्रेष्ठ हैं, और इनमें ऐसा होने का पूरा घमण्ड भी होता है। ये उच्च वर्गों से आते हैं और आम तौर पर उच्च जातियों से भी। ऐसी बहुत सारी चीज़ें हैं जो इनके पक्ष में होती हैं, और इसके चलते कहीं-न-कहीं इनकी दृष्टि पूरी तरह से पारम्परिक मूल्यों में बद्ध होती है। हम सभी जो किसी-न-किसी प्रकार से हाशिए पर खड़े हैं, जो इस माहौल में फिट नहीं होते - चाहे वो जाति के कारण हो, या जेंडर के, या फिर जाति और जेंडर, दोनों के कारण। हाशियाकरण का बड़ा गहरा बोध होता है लेकिन हम इसे ज़ाहिर नहीं करते हैं क्योंकि हम सभी उस सामान्य छात्र-जीवन का हिस्सा होना चाहते हैं, और इस कारण से हम अपनी विशिष्टता को अभिव्यक्त नहीं करना चाहते। इसमें बहुत ज़्यादा समय लगता है, मुझे तो लगभग 20-25 साल लग गए, और वह भी बहुत सारी अन्य महिलाओं के अनुभवों को पढ़ने के बाद, जैसे कि एव्लिन फॉक्स केलर जिसे खुद अपने व्यक्तिगत अनुभवों के बारे में बात करने में कई साल लगे। विज्ञान जगत में अन्य महिलाओं के अनुभवों, पुरुष

आधिपत्य वाले विज्ञान व तकनीकी संस्थान में होने का मेरा खुद का अनुभव, दोनों पर विचार करने के बाद, यह समझना कि असल समस्या मुझमें नहीं है - समस्या उस सांस्कृतिक परिवेश में है जो उस जगह पर हावी है।

विवेक: जैसा कि आपने लिखा है, यह ऐसा सवाल भी है जिसे नकारा गया है। ऐतिहासिक तौर पर, विज्ञान में जेंडर के अन्तर की चर्चा अमूमन केवल संख्या के अन्तर के रूप में ही देखी गई है। आपने कहा है कि यह पर्याप्त गहराई नहीं है, और अभी-अभी आपने यह बताया कि किस तरह से यह कहीं ज़्यादा जटिल मसला है। अब किस बात को नज़रअन्दाज़ किया जा रहा है?

चयनिका: एक वजह जिसके चलते एक खास तबके के लोग किसी क्षेत्र में मौजूद नहीं हैं, मसलन विज्ञान के क्षेत्र में महिलाएँ मौजूद नहीं हैं, यह इसलिए हो सकता है कि ये लोग किन्हीं अन्तर्जात कारणों से इस क्षेत्र में होने के काबिल ही नहीं हैं, है न? और विज्ञान में हम यह मान लेते हैं कि हर व्यक्ति अपनी योग्यता और अपने काम के आधार पर परखा जा रहा है, और इसमें किसी दूसरे तरह के पूर्वाग्रहों की कोई गुंजाइश नहीं है। इस तरह आप यह मान लेते हैं कि अगर कुछ लोग वहाँ नहीं हैं तो इसका मतलब है कि उनमें वैसी योग्यता ही नहीं है। लेकिन आज के दौर में भी यह मानना बड़ा अजीब है कि केवल उच्च वर्ण या उच्च वर्ग के पुरुषों - अमेरिका में गोरे आदमियों और यहाँ के ब्राह्मण पुरुषों - में ही इतनी अक्ल है कि वे विज्ञान के क्षेत्र में काम कर सकें। इस तरह के विचार को हमें रुक कर सोचने के लिए बाध्य करना चाहिए।

क्या ऐसा इसलिए है कि अन्य लोगों में योग्यता ही नहीं है या कहीं ऐसा तो नहीं कि यहाँ कुछ इस तरह की चीज़ें घटित हो रही हैं जो उन्हें महसूस कराती हैं कि यह उनकी जगह नहीं है? यह अहसास कि यह आपकी जगह नहीं है, कई तरह से अपना असर दिखाती है। किसी संस्था में यह आपको हाशिए पर धकेल देती है। लोग आपका मज़ाक उड़ाते हैं, या फिर आम तौर पर लोग महिलाओं के प्रति हिकारत का भाव रखते हैं। और इतने से ही आप एक प्रकार के आत्मरक्षात्मक रवैये में बँध जाती हैं, जिसका भान आपको उस वक्त नहीं होता है। लेकिन निश्चित तौर पर एक ऐसा दायरा होता है जहाँ आप यह सोचते हैं कि आप उस महिला की तरह तो नहीं होना चाहते जिसका मज़ाक उड़ाया जा रहा है। इस तरह उनकी (मज़ाक उड़ाने वालों की) तरह होने के लिए, उन्हें स्वीकार्य होने के लिए मैं अपने आपको कई

तरह से नकारती हूँ।

अगर संख्याओं पर बारीकी से नज़र डाली जाए तो ये सारे पूर्वाग्रह प्रकट होते हैं। अगर आप विज्ञान में महिलाओं की उपस्थिति पर नज़र डालें तो यह देखेंगे कि केवल सामाजिक कारणों से ही महिलाओं की संख्या कम नहीं हुई है। यह सही है कि एक हद तक यह भी इसका कारण तो है - समाज की यह मान्यता कि महिलाएँ विज्ञान के लिए योग्य नहीं हैं। महिलाओं के ऊपर घर का दोहरा बोझ होता ही है। यहाँ तक कि अगर उनकी शादी वैज्ञानिकों से हुई हो तो भी ऐसा नहीं कि पुरुष वैज्ञानिक घरेलू कामों के लिए समय निकालने वाले हैं। लेकिन इससे भी बढ़कर, मसला यह है कि आप किस तरह से नियुक्तियाँ कर रहे हैं। अगर मैं यह सोचती हूँ कि महिलाएँ पुरुष जितनी योग्य नहीं हैं तो मैं महिलाओं की नियुक्ति उसी तरीके से नहीं करूँगी (जैसे की पुरुषों की करूँगी)। मैं उन्हें उस तरह से प्रोत्साहित नहीं करूँगी। इस तरह मेरे पूर्वाग्रह रिस कर हर जगह फैल जाते हैं - नियुक्तियों में, काम को देखे जाने में, उनके मूल्यांकन में, ग्रॉंट (फण्ड) देने में और इसी तरह अनेक तरीकों से ऐसा होता है।

विवेक: आपने अपने एक हालिया लेख में इस तरफ ध्यान खींचा भी है। आपने भारत और अमेरिका से रपटों और शोधों का हवाला देकर वैज्ञानिक संस्थानों में होने वाले लैंगिक भेदभाव को उभारा है। इसके बारे में कुछ और बताएँ।

चयनिका: करीब से देखने पर मैंने यह महसूस किया है कि स्नातक या स्नातकोत्तर स्तर तक विज्ञान के विषयों और दूसरे विषयों में आने वाली महिलाओं की संख्या (और उनके प्रतिशत) में बहुत अन्तर नहीं है। विज्ञान में भी, यह दिखाने के लिए कि 'हार्ड साइंसेज़' की तुलना में 'सॉफ्ट साइंसेज़' में महिलाओं की संख्या ज़्यादा है, हमारे पास पर्याप्त तथ्य नहीं हैं। लेकिन पिछले 7-8 सालों में यह जानने के लिए कि भौतिक शास्त्र में पर्याप्त संख्या में महिलाएँ क्यों नहीं हैं, दुनिया भर में भौतिक शास्त्र में कार्यरत महिलाओं द्वारा अध्ययन किए गए हैं। और ये देश-व्यापी अध्ययन हैं। भारत में जो पहला अध्ययन हुआ था उसमें विज्ञान के क्षेत्र में काम कर रही महिलाओं की समस्या को पूरी तरह समाज पर आरोपित कर दिया था। लेकिन बाद के एक अध्ययन में उन महिलाओं का अध्ययन किया गया जो डॉक्टरेट डिग्री के बाद भी विज्ञान के क्षेत्र में सक्रिय थीं और वे जो शोधकार्य को छोड़ चुकी थीं। मुझे लगता है कि इस अध्ययन में जो महत्वपूर्ण दृष्टि उभर कर आई वह यह थी कि हमें न केवल उन लोगों से बात करनी चाहिए

जो इस क्षेत्र में मौजूद हैं बल्कि ज़रूरी है कि हम उन लोगों से भी बात करें जो वहाँ नहीं हैं ताकि यह जाना जा सके कि वे वहाँ क्यों नहीं हैं, और यह भी कि क्या सक्रिय शोध से बाहर होने का उनका फैसला किन्हीं सामाजिक कारणों से था, या फिर इसके कारण (संस्थानों के) भीतर थे।

मुझे लगता है कि इस बदलाव ने एक नए नज़रिए से देखने में मदद की, और इसी के चलते इन महिलाओं की तरफ से माँग भी बदल गई। उन्होंने कहा कि हमें अकादमिक संस्थानों के कामकाज के तरीकों को बदलना होगा, हमें ऐसी नीतियाँ बनानी होंगी जिनसे महिलाओं को इन संस्थाओं में बने रहने के लिए प्रोत्साहन मिलेगा - यानी संस्थाओं के भीतर ही बदलाव होने चाहिए। ये अध्ययन समाज-शास्त्रियों ने नहीं किया है। ये वैज्ञानिक की हैसियत से अपनी बात कह रही हैं और इनका कहना है कि समस्याएँ केवल बाहर ही नहीं हैं। समस्याएँ अकादमिक संस्थानों में मौजूद हैं। संस्थान जेंडर-पूर्वाग्रहों से मुक्त नहीं है। यह जेंडर के आधार पर काफी भेद करते हैं। यह पूर्वाग्रह हर स्तर पर काम करता है - नियुक्तियों में, प्रमोशन में, ग्रान्ट देने में, और दूसरे अनेक स्तरों पर। अब महिलाएँ ज़्यादा मुखर हो गई हैं और वे ज़्यादा खुल कर अपनी बात रख रही हैं, और हम यह देख रहे हैं कि समस्या यह नहीं है कि समाज लोगों को बाहर आने पर मजबूर करता है, या लोगों को काम करते रहने से रोकता है या आगे न बढ़ने के लिए बाध्य करता है, यहाँ (समाज में) समस्या का केवल एक अंश मात्र ही है। काफी हद तक समस्या संस्थानों के भीतर भी है, कि किस तरह से उनमें जेंडर-पूर्वाग्रह हैं, पुरुषवादी सोच है और जिस प्रकार की संस्था-संरचना है वह महिलाओं को भीतर आने से रोकती है।

विवेक: अपने आलेख में आप एक कदम और आगे बढ़ गई हैं, और कहा है, "वैज्ञानिक संस्थाओं का जेंडर-पूर्वाग्रहयुक्त चरित्र दरअसल विज्ञान के हर आयाम के सामान्य पुरुषवादी रुझान से जुड़ा हुआ है।" अगर आलेख में कही गई एक बात को पलट कर कहूँ तो यह पूछना चाहूँगा कि 'बॉयल्स लॉ' में जेंडर कहाँ है?

चयनिका: यह बड़ी ही अजीब-सी बात है जो आपको लगातार करते रहनी पड़ती है कि पुरुषवादीकरण को अक्सर केवल पुरुषों से जोड़ कर देखा जाता है, है ना? यह सही है कि पुरुष इसमें बसे हैं। लेकिन यह एक व्यापक अवधारणा है, और यह बात मुझे नारीवाद ने सिखाई है: यह ऐसी चीज़ है जो पुरुषों को विशेषाधिकार प्रदान करती है। बात केवल एक पुरुष होने की नहीं है, उसी तरह जैसे नारीवाद केवल महिला होने की बात नहीं है। किसी

भी जगह को पुरुषों या महिलाओं के लिए तय कर देने की यह सामाजिक प्रक्रिया पुरुषों को विशेषाधिकार देती है और महिलाओं को हाशिए पर धकेल देती है। लेकिन मर्दवाद केवल पुरुषों से सम्बन्धित नहीं है, यह नारीवादी समझ मैं यहाँ साझा करना चाहूँगी। विज्ञान की तटस्थता जिसकी अक्सर बात की जाती है - कि विज्ञान तो वैज्ञानिकों द्वारा की जाने वाली कोई प्रक्रिया है और वैज्ञानिक अपने काम में किसी भी तरह का सामाजिक पूर्वाग्रह नहीं लाते हैं - यह सोच मेरी नज़र में मर्दवादी सोच है। और मैं ऐसा क्यों कहती हूँ यह समझा सकती हूँ। पुरुषवादी सोच का मतलब होता है विज्ञान के प्रति वैज्ञानिकों के नज़रिए की वस्तुनिष्ठता पर ज़्यादा ज़ोर देना। इसका अर्थ है विज्ञान को एक ऐसे प्रोजेक्ट के रूप में देखना जिससे यह बात पुष्ट होती हो कि इस दुनिया का एक वस्तुनिष्ठ सच है, जो कि इसकी व्यक्तिपरकता से इतर है।

मेरा मानना है कि यह अन्तर, और यह अन्तर करने की ज़रूरत अपने आप में एक जेंडर-पूर्वाग्रहयुक्त कार्य है। मामला केवल पुरुष होना नहीं है, न ही यह केवल महिलाओं के दमन की बात है, न ही पुरुषों के पास सत्ता होने का मामला है, यह इन सब से बढ़कर कुछ है। इसका अर्थ है यह कहना कि दुनिया इस तरह से व्यवस्थित की गई है कि वस्तुनिष्ठ और व्यक्तिनिष्ठ में अन्तर किया जा सकता है। और मेरा मानना है कि यही वह चीज़ है जिसे पुरुषवादीकरण कह सकते हैं। यह सामाजिक जड़ों से कटी हुई वैज्ञानिक पद्धति है, जो कि विज्ञान का एक पुरुषवादी रूप ही है। अगर पीछे मुड़कर देखें और विज्ञान के इतिहास को समझने की कोशिश करें तो पाएँगे कि वस्तुनिष्ठ और व्यक्तिनिष्ठ के बीच द्विभाजन, प्रकृति वहाँ बाहर और समाज यहाँ, या अध्ययन यहाँ और प्रकृति वहाँ, इस तरह का द्विभाजन नहीं हो सकता। इस तरह का विभाजन इसलिए नहीं हो सकता क्योंकि ये दोनों हमेशा एक-दूसरे को प्रभावित करते रहते हैं, और मेरी दृष्टि में यही समझ विज्ञान के पुरुषवादी होने की समझ में बदलाव ला रही है।

जब भी मैं विज्ञान के नारीवादी विश्लेषण की बात करती हूँ, लोग यही सवाल उठाते हैं - तो अगर महिलाएँ यह काम करतीं तो क्या वे 'बॉयल्स लॉ' की खोज नहीं करतीं? क्या गुरुत्वाकर्षण का नारीवादी सिद्धान्त किसी अलग तरह का होगा? बात यह नहीं है कि एक महिला होने के नाते मैं गुरुत्वाकर्षण के सिद्धान्त को अलग नज़रिए से देखूँगी, लेकिन यह हो सकता है कि एक महिला और एक नारीवादी होने के नाते मैं इस दुनिया को समझने के लिए कोई बिलकुल ही अलग सवाल उठाऊँ। हो सकता है कि मैं दुनिया में हर चीज़ को समझने के लिए किसी एक सरल-से नियम

की खोज ही न करूँ। हो सकता है कि यह मेरी तलाश ही न हो। हो सकता है कि हम दुनिया को बिलकुल अलग ही नज़रिए से देखें और हो सकता है हम उन पुराने तौर-तरीकों का उपयोग ही न करें।

इनमें से कई बातें पिछले कुछेक सालों में गलत सिद्ध हो चुकी हैं, जैसे यह कि भौतिक शास्त्र की पद्धति को विज्ञान के हर विषय में इस्तेमाल करना चाहिए या यह कि विज्ञान की पद्धति को सामाजिक विज्ञान में भी इस्तेमाल किया जाना चाहिए। हमने यह सब अब बदल दिया है। और ऐसा हो पाया है क्योंकि हम यह समझ सके हैं कि इस तरह का द्विभाजन है ही नहीं। और सभी वैज्ञानिक विषयों में सबसे कठिन भौतिक शास्त्र के लिए भी यह मानना बेहतर होगा कि यह द्विभाजन अपने आप में गलत है। हमारी इस बात से आप यह समझ सकते हैं कि आपको कोई नारीवादी 'बॉयल्स लॉ' नहीं मिलने वाला है। लेकिन यह ज़रूर होगा कि विज्ञान के पूरे ज्ञानात्मक ढाँचे में 'बॉयल्स लॉ' की उपस्थिति अलग होगी - वह सबसे ज़रूरी चीज़ नहीं होगी।

और मुझे लगता है कि इसके अनेक उदाहरण दिए जा सकते हैं, विज्ञान में बहुत सारी चीज़ें हैं जो हमारी समझ में बहुत ही ज़्यादा जेंडर-पूर्वाग्रह से युक्त हैं। पुरुषवादीकरण को समझने के लिए शायद लोगों को नारीवाद समझना होगा और उन्हें नारीवाद को स्त्री के शोषण के आगे जाकर समझना होगा। मेरे हिसाब से यह सबसे महत्वपूर्ण बात है, परिवर्तन की शुरुआत है।

विवेक: अभी-अभी आपने एक बहुत ही रोचक और ज़रूरी आयाम की ओर इशारा किया है - आपने विज्ञान की प्रकृति और विज्ञान के इतिहास की बात कही, यह ऐसी चीज़ें हैं जो स्कूलों में नहीं पढ़ाई जातीं। खुद विज्ञान का छात्र होने के बावजूद मैंने इस बारे में कभी नहीं पढ़ा। लेकिन विज्ञान के बारे में नारीवादी अध्ययनों ने विज्ञान-शिक्षण की बहस को नई दिशा दी है। जैसा कि आपने अपने एक शोध-पत्र में ज़िक्र किया है, यह 'रेडीमेड' विज्ञान से 'रचने की प्रक्रिया' के विज्ञान की तरफ एक मोड़ है। क्या आप इस पर कुछ और रोशनी डालेंगी?

चयनिका: खास तौर पर अपने बारे में कहूँ, तो वह एक कारण जिसके चलते मैंने विज्ञान को अपने आप से बहुत दूर और अलग-थलग पाकर वैज्ञानिक शोध आगे जारी न रखने का फैसला किया, वह था विज्ञान का मेरी रोज़मर्रा की ज़िन्दगी से बहुत ही अलग-थलग होना।

अगर पीछे मुड़कर विज्ञान के इतिहास पर नज़र डालें, विज्ञान के समाजशास्त्र

पर नज़र डालें और आम तौर पर वैज्ञानिक अध्ययनों को देखें, तो मुझे लगता है कि यह एक क्षेत्र है जिसमें विज्ञान में अभी बहुत कमियाँ हैं, जैसा कि हमने पहले बात की थी। यह विभाजन इतना प्रबल है कि हम वास्तव में जो पढ़ाते हैं वह तो बस अन्तिम नतीजा ही होता है। ये खोजें किन ऐतिहासिक परिस्थितियों में हुईं थीं इसके बारे में बात करने की परवाह हम कभी भी नहीं करते हैं। हम कभी इस बारे में बात करने की परवाह नहीं करते कि इन चीज़ों का समाज पर क्या असर पड़ा है। हम इसकी भी परवाह नहीं करते कि जब इन विचारों पर बातचीत चल रही थी तो उस वक्त कैसी बहसें होती थीं। कहीं-न-कहीं, हम यह कह रहे हैं कि इन सिद्धान्तों को विज्ञान की रचना-प्रक्रिया के सन्दर्भ में रखने से ये विभाजन खत्म हो सकता है - दोनों को पास लाइए, एक-दूसरे के साथ रखिए, यह मानिए कि विज्ञान पर समाज का प्रभाव है और समाज पर विज्ञान का, और इसे शिक्षा में शामिल कीजिए।

इससे बहुत सारे लोगों को, जो विविध प्रकार से हाशिए पर धकेले गए हैं, चाहे वे महिलाएँ हों, अश्वेत हों, या इस देश में दलित, वे सभी लोग जो यह महसूस करते हैं कि यह क्षेत्र उनके लिए खुला नहीं है, हो सकता है इससे उन्हें आकर्षित करने में और सम्बद्ध रखने में मदद मिलेगी। क्योंकि इस तरह से शायद वे महसूस करेंगे कि विज्ञान उनकी पहुँच में है, ज़्यादा वास्तविक है, उनकी ज़िन्दगी और जिस दुनिया में वे रहते हैं उससे जुड़ा हुआ है। इससे विज्ञान भी समृद्ध होता है। इस तरह आप विज्ञान के बारे में ऐसे बात करते हैं जैसे कि वह ऐसी चीज़ हो जिसका निर्माण इन्सानों ने किया है, साधारण इन्सानों ने। इसलिए वह ऐसा ज्ञान है जो समाज के भीतर से निकला है, और किसी दूसरे ज्ञान की ही तरह उसके भी सांस्कृतिक आयाम हैं।

मुझे लगता है कि हम विज्ञान के पाठ्यक्रमों में और शिक्षा में विज्ञान पढ़ाते हुए कोशिश करते हैं कि उसे अन्तिम वस्तु की तरह पेश न करें। हम उसे ऐसे पढ़ाने की कोशिश करें जैसे उसका विकास हुआ है, उसके इतिहास, समाजशास्त्र, उसकी स्थिति, और उसके बारे में तमाम बहसों को समेटते हुए, जोकि बहुत ज़रूरी है। ये वो चीज़ है जिसे हमने पूरी तरह नज़रअन्दाज़ कर दिया है। वैज्ञानिक पद्धति के बारे में हम मानते हैं कि सारे वैज्ञानिक इसे अपने आप जानते हैं, लेकिन यह वो चीज़ है जिसे हम बिलकुल नहीं पढ़ाते हैं। लेकिन हम सब की मान्यता है कि विज्ञान वस्तुनिष्ठ है - क्योंकि हम उसे इसी तरह पढ़ाते हैं - कि वह बस एक प्रकार का ज्ञान है जिसे लोग कहीं से सीख लेते हैं और जो हमें दुनिया के बारे में बताता है।

विवेक: आपने विज्ञान शिक्षण पर एक पाठ्यक्रम के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है जिसमें विज्ञान में नारीवादी अध्ययनों और उन पक्षों को शामिल किया गया है जिनके बारे में आपने बात की। यह एक महत्वपूर्ण बदलाव है। इस पाठ्यक्रम पर विद्यार्थियों की क्या प्रतिक्रिया है? और आपकी अपनी समझ पिछले कुछ सालों में किस तरह से बदली है?

चयनिका: आखिरी बात से शुरू करते हुए, जैसा कि आपने पहले पूछा था, मुझे लगता है कि 'एक रचना-प्रक्रिया के रूप में विज्ञान' और 'अन्तिम उत्पाद के रूप में विज्ञान' की मेरी समझ इस कोर्स के अध्यापन के मेरे अनुभव से आई है। इस तरह इससे मुझे शिक्षा और विज्ञान शिक्षण के विमर्शों को समझने में भी मदद मिली है। मैं इस क्षेत्र में नारीवाद की अपनी उस समझ और विज्ञान की अपनी उस समझ के साथ आई थी जिस तरह से मुझे ये पढ़ाए गए थे। मैं शिक्षा और विज्ञान के विषयों से रूबरू हुई और इससे नारीवादी आलोचनाओं की मेरी समझ पर प्रभाव पड़ा है। नारीवादी

टाटा सामाजिक विज्ञान संस्थान, मुम्बई के एम.ए. (ऐलीमेंट्री एजुकेशन) कोर्स में एक वैकल्पिक विषय के तौर पर पढ़ाया जाने वाला यह विषय न केवल विज्ञान के शिक्षाशास्त्र बल्कि उसके स्वरूप और उसकी प्रकृति पर भी एक समालोचनात्मक नज़रिया प्रस्तुत करता है। कोर्स के तहत, सामाजिक विज्ञान की कुछ प्रमुख धाराओं जैसे, समाज-शास्त्र, इतिहास व दर्शन-शास्त्र के दृष्टिकोण से भी विज्ञान की विषयवस्तु और उसके संरचनात्मक ढाँचे को समझने की कोशिश रहती है। इस सम्बन्ध में दुनिया में चल रही विभिन्न विचारधाराओं और आन्दोलनों जैसे पर्यावरण आन्दोलन, नारीवादी आन्दोलन आदि ने पिछले कुछ सालों में किस-किस तरह के सवाल उठाए हैं और उसके चलते शिक्षा और विशेषकर विज्ञान शिक्षा के लिए किस तरह के सवाल और रास्ते खुलते हैं, इन मुद्दों पर भी गम्भीरता से विचार किया जाता है। चूँकि ये सवाल नए नहीं हैं और अलग-अलग समय पर अलग-अलग तरीकों से इनसे निपटने की कोशिशें लोग, विशेषकर शिक्षाशास्त्री लगातार करते आए हैं तो थोड़ी बातचीत देश और विदेश स्तर पर हुए प्रयासों, उनके अनुभवों और समकालीन शोध पर भी होना स्वाभाविक ही है। इस कोर्स में कोशिश यह नहीं है कि विज्ञान या विज्ञान शिक्षण के बारे में सभी छात्र-छात्राएँ एक जैसा सोचने लग जाएँ बल्कि जो जिस भी सोच-समझ के साथ आ रहे हैं, वे उस समझ पर सोचना-विचारना, आत्ममन्थन शुरू कर सकें और हम कहीं एक ऐसी दिशा में बढ़ सकें जहाँ विज्ञान और विज्ञान शिक्षा पर कड़े सवाल पूछने और उनसे जूझने का एक माहौल बने।

आलोचना को भी मैं बाकियों की तरह ही देख रही हूँ, एक प्रकार की आलोचना की तरह। विज्ञान की अन्य आलोचनाएँ भी हैं, जैसे कि उत्तर-औपनिवेशिक आलोचनाएँ और मैं नारीवादी आलोचनाओं को भी इन्हीं में एक मानती हूँ। इसी तरह जहाँ शिक्षा की बात है, हम यह देखते हैं कि बाकी विषय किस तरह पढ़ाए जा रहे हैं और यह जानने की कोशिश करते हैं कि विज्ञान किस तरह से अलग है, और किस तरह एक परिप्रेक्ष्य में रख कर उसे अलग नज़रिए से देखा जा सकता है।

जहाँ तक उस कोर्स की बात है, मुझे लगता है कि मैं खुशनसीब रही हूँ क्योंकि हमारे पास बहुत कम विद्यार्थी थे और एक बार फिर, मुझे लगता है कि विज्ञान शिक्षण का सवाल आ जाता है, आप उस दिशा में जाना चाहते हैं या नहीं। दूसरी बात यह है कि लोग शिक्षाशास्त्रीय पाठ्यक्रम चाहते हैं। यानी वे ऐसा कोर्स नहीं चाहते जिसमें शिक्षाशास्त्रीय दृष्टिकोण की बराबर जगह न हो। जहाँ तक इस कोर्स की बात है इसमें शिक्षाशास्त्रीय नज़रिया तो है ही, साथ ही ये विज्ञान को भी आलोचनात्मक नज़रिए से देखता है।

हमारे पास बहुत कम विद्यार्थी थे, लेकिन वे सब बहुत अच्छे विद्यार्थी थे। और हर बैच में दो-तीन ऐसे विद्यार्थी रहे हैं जो विज्ञान शिक्षण के क्षेत्र में इसी तरह से सक्रिय रहे हैं। और मेरे लिए यह बड़ी उपलब्धि है, क्योंकि चीज़ों के बारे में इस तरह से बात करने वाले लोग बहुत कम हैं। इस दृष्टि से देखें तो किसी भी पाठ्यक्रम को जो काम करना चाहिए - कुछ लोगों में जिज्ञासा जगाने का काम, विचारों को आगे ले जाने का काम और विषय को और भी समृद्ध बनाने का काम, चार या पाँच साल के छोटे-से समय में ही इस कोर्स ने कर दिखाया है।

और यह हमेशा आसान नहीं रहा है, क्योंकि एक तरह से ये आपको खुद भी अन्दर से हिलाता है। जिस बात पर लोग सबसे ज़्यादा प्रतिक्रिया देते हैं वो है नारीवाद को विज्ञान में लाने की कोशिश। ये लोग इतिहास, दर्शन या समाज शास्त्र को विज्ञान से जोड़ने पर कुछ नहीं कहते, लेकिन नारीवाद को विज्ञान में लाना उन्हें असहनीय लगता है। लेकिन इससे लोगों पर कुछ प्रभाव तो पड़ता ही है। वे कुछ अलग हट कर सोचने पर मजबूर हो जाते हैं।

लोग चाहे जिस तरह से या जिस जगह पर हों, अगर वे चीज़ों पर पुनर्विचार करने के लिए तैयार हैं तो वे आगे बढ़ते हैं। लेकिन अगर वे पुनर्विचार करने के लिए तैयार नहीं हैं, और हमारे पास कुछ ऐसे विद्यार्थी भी थे जो मानते थे कि ये थोड़ा ज़्यादा हो रहा है, ऐसे में उनके तर्क और भी ज़ोरदार हो

जाते थे। इसलिए मेरा मानना है कि ये हर विद्यार्थी के लिए चीज़ों से जूझने की गुंजाइश बनाता ही है। ऐसा नहीं है कि हर कोई उसी तरह से सोचने लगता है जैसे मैं सोचती हूँ, यह इस कोर्स का मकसद भी नहीं है। लेकिन यह हर व्यक्ति को सोचना शुरू करने के लिए प्रेरित तो करता ही है, और मुझे लगता है कि यही बात तो किसी भी कोर्स में होनी चाहिए, और इस तरह मेरा मानना है कि यह एक सफल कोर्स रहा है।

चयनिका शाहः एक नारीवादी व समलैंगिक अधिकार कार्यकर्ता हैं। भौतिक शास्त्र में पीएच.डी. हैं और मुम्बई विश्वविद्यालय से सम्बद्ध एक महाविद्यालय में बीस साल से भी ज़्यादा समय तक अध्यापन किया है। इसके अलावा मुम्बई स्थित टाटा इंस्टिट्यूट ऑफ सोशल साइंसेज़ में स्नातकोत्तर स्तर पर 'नारीवादी विज्ञान अध्ययन' और 'विज्ञान शिक्षण' जैसे पाठ्यक्रम बनाए हैं व उनका अध्यापन किया है। 'भारत की छाप' व 'वी एंड अवर फर्टिलिटीः दी पॉलिटिक्स ऑफ टेक्नोलॉजिकल इंटर्वेन्शन' नामक किताबों का सह-लेखन किया है।

विवेक वेलांकीः टाटा इंस्टिट्यूट ऑफ सोशल साइंसेज़, मुम्बई से एलीमेंटरी एजुकेशन में एम.ए. किया है। आरआरसीईई, दिल्ली से सम्बद्ध।

अँग्रेज़ी से अनुवादः लोकेश मालती प्रकाशः दिल्ली विश्वविद्यालय से राजनीति विज्ञान और विधि का अध्ययन किया है। भोपाल में रहकर स्वतंत्र लेखन एवं अनुवाद कार्य कर रहे हैं। शिक्षा के आन्दोलन से सक्रिय रूप से जुड़े हैं।

पृष्ठ 78 पर दिया गया बॉक्स **हिमांशु श्रीवास्तव** ने तैयार किया है। हिमांशु होमी भाभा सेंटर फॉर साइंस एजुकेशन से पीएच.डी. कर रहे हैं।

यह साक्षात्कार मूलतः आरआरसीईई, दिल्ली द्वारा शिक्षा पर चलाए जा रहे पोडकास्ट सीरीज़ के अन्तर्गत लिया गया था।